तीन महत्वपूर्ण लेख

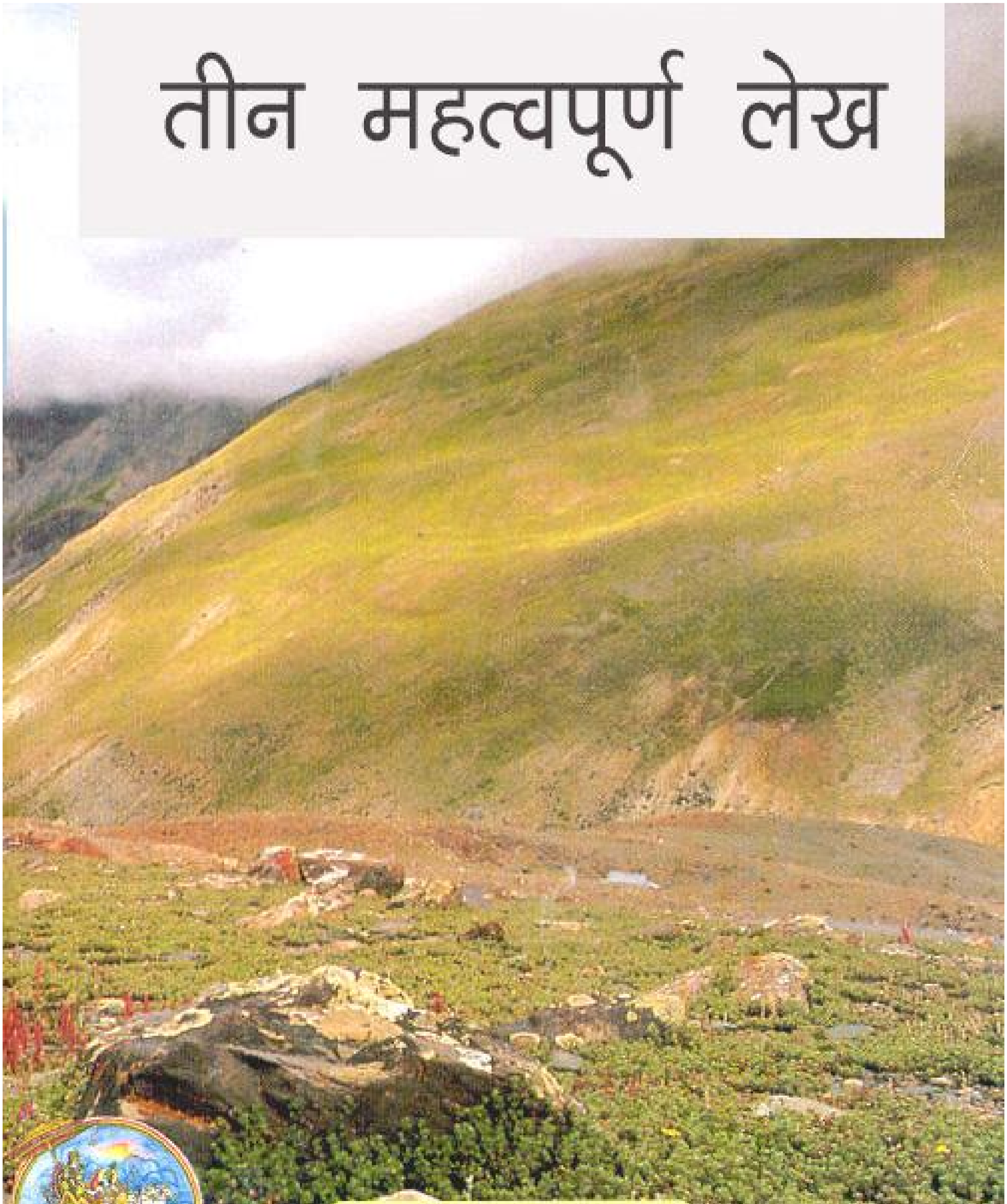

स्वामी रामसुखदास

|| श्रीहरिः ||

साधकों के प्रति

श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज

श्री भगवान कहते हैं :–

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्।।

''अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्यों के लिये मैंने तीन योग बतायें हैं– ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग। इन तीनों के सिवाय दूसरा कोई कल्याण का मार्ग नहीं है।''

परमात्मप्राप्ति तत्काल होने वाली वस्तु है। इसमें न तो भविष्य की अपेक्षा है और न क्रिया एवं पदार्थ की ही अपेक्षा है। परमात्मप्राप्ति के तीन मुख्य मार्ग हैं :–

विवेक मार्ग

अपने जाने हुए असत् का त्याग करना विवेक–मार्ग है। इसके तीन उपाय हैं :–

1– अकिंचन होना अर्थात अनन्त बह्मामण्डों में लेशमात्र भी कोई वस्तु मेरी नहीं है।

2– अचाह होना अर्थात् मेरे को कुछ भी नहीं चाहिये।

3– अप्रयत्न होना अर्थात् अपने लिये कुछ न करना। अपने लिये कुछ ना करने से अहम् नहीं रहेगा।

योग मार्ग

बुराई का सर्वांश में त्याग करना योग–मार्ग है। इसके तीन उपाय है :–

1– किसी को बुरा न समझना, किसी का बुरा न चाहना और किसी के साथ बुराई न करना।

2– दु:खी व्यक्तियों को देखकर करूणित होना और सुखी व्यक्तियों को देखकर प्रसन्न होना

3– संसार से मिली हुई वस्तुओं को संसार की ही सेवा में लगा देना और बदले में कुछ न चाहना।

विश्वास मार्ग

संर्वाश में भगवान के शरणागत हो जाना विश्वास–मार्ग है। इसके दो उपाय है :–

1– मैं केवल भगवान का अंश हूँ – 'ममैवांशो जीवलोके' (गीता 15/7) 'ईश्वर अंस जीव अबिनासी' (मानस 7/117/1)। भगवान मेरे पिता हैं, मैं उनका पुत्र हूँ। भगवान का अंश होने के नाते मैं केवल भगवान् का हूँ और केवल भगवान ही मेरे हैं। भगवान के सिवाय और कोई मेरा नहीं है।

2– (क) सब कुछ उनका है अर्थात् संसार में जो कुछ भी देखने, सुनने और मनन करने में आता है, वह सब भगवान् का ही है।
(ख) सब कुछ वे ही हैं अर्थात भगवान् के सिवाय कुछ भी नहीं है। मैं–सहित सम्पूर्ण जगत् उन्हीं का स्वरूप है।
(ग) उनके सिवायं अन्य कुछ हुआ ही नहीं, कभी होगा नहीं, कभी होना सम्भव ही नहीं। एक मात्र भगवान् ही थे, भगवान् ही हैं और भगवान् ही रहेंगे – 'वासुदेवः सर्वम्' (गीता –7/19)। इसी के अनुभव में मानव जीवन की पूर्णता है।

७-भगवान् आज ही मिल सकते हैं

परमात्मप्राप्ति बहुत सुगम है। इतना सुगम दूसरा कोई काम नहीं है। परन्तु केवल परमात्माकी ही चाहना रहे, साथमें दूसरी कोई भी चाहना न रहे। कारण कि परमात्माके समान दूसरा कोई है ही नहीं*। जैसे परमात्मा अनन्य हैं, ऐसे ही उनकी चाहना भी अनन्य होनी चाहिये। सांसारिक भोगोंके प्राप्त होनेमें तीन बातें होनी जरूरी हैं—इच्छा, उद्योग और प्रारब्ध। पहले तो सांसारिक वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छा होनी चाहिये, फिर उसकी प्राप्तिके लिये कर्म करना चाहिये। कर्म करनेपर भी उसकी प्राप्ति तब होगी, जब उसके मिलनेका प्रारब्ध होगा। अगर प्रारब्ध नहीं होगा तो इच्छा रखते हुए और उद्योग करते हुए भी वस्तु नहीं मिलेगी। इसलिये उद्योग तो करते हैं नफेके लिये, पर लग जाता है घाटा! परन्तु परमात्माकी प्राप्ति इच्छामात्रसे होती है। उसमें उद्योग और प्रारब्धकी जरूरत नहीं है। परमात्माके मार्गमें घाटा कभी होता ही नहीं, नफा-ही-नफा होता है।

एक परमात्माके सिवाय कोई भी चीज इच्छामात्रसे नहीं मिलती। कारण यह है कि मनुष्यशरीर परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मिला है। अपनी प्राप्तिका उद्देश्य रखकर ही भगवान्ने हमारेको मनुष्यशरीर दिया है। दूसरी बात, परमात्मा सब जगह हैं। सुईकी तीखी नोक टिक जाय, इतनी जगह भी भगवान्से खाली नहीं है।

---

* न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव॥

(गीता ११। ४३)

'हे अनन्त प्रभावशाली भगवन्! इस त्रिलोकीमें आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, फिर आपसे अधिक तो हो ही कैसे सकता है!'

अतः उनकी प्राप्तिमें उद्योग और प्रारब्धका काम ही नहीं है। कर्मोंसे वह चीज मिलती है, जो नाशवान् होती है। अविनाशी परमात्मा कर्मोंसे नहीं मिलते। उनकी प्राप्ति उत्कट इच्छामात्रसे होती है।

पुरुष हो या स्त्री हो, साधु हो या गृहस्थ हो, पढ़ा-लिखा हो या अपढ़ हो, बालक हो या जवान हो, कैसा ही क्यों न हो, वह इच्छामात्रसे परमात्माको प्राप्त कर सकता है। परमात्माके सिवाय न जीनेकी चाहना हो, न मरनेकी चाहना हो, न भोगोंकी चाहना हो, न संग्रहकी चाहना हो। वस्तुओंकी चाहना न होनेसे वस्तुओंका अभाव नहीं हो जायगा। जो हमारे प्रारब्धमें लिखा है, वह हमारेको मिलेगा ही। जो चीज हमारे भाग्यमें लिखी है, उसको दूसरा नहीं ले सकता—'**यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्**'। हमारेको आनेवाला बुखार दूसरेको कैसे आयेगा? ऐसे ही हमारे प्रारब्धमें धन लिखा है तो जरूर आयेगा। परन्तु परमात्माकी प्राप्तिमें प्रारब्ध नहीं है।

परमात्मा किसी मूल्यके बदले नहीं मिलते। मूल्यसे वही वस्तु मिलती है, जो मूल्यसे छोटी होती है। बाजारमें किसी वस्तुके जितने रुपये लगते हैं, वह वस्तु उतने रुपयोंकी नहीं होती। हमारे पास ऐसी कोई वस्तु (क्रिया और पदार्थ) है ही नहीं, जिससे परमात्माको प्राप्त किया जा सके। वह परमात्मा अद्वितीय है, सदैव है, समर्थ है, सब समयमें है और सब जगह है। वह हमारा है और हमारेमें है—'**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः**' (गीता १५। १५), '**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**' (गीता १८।६१)। वह हमारेसे दूर नहीं है। हम चौरासी लाख योनियोंमें चले जायँ तो

भी भगवान् हमारे हृदयमें रहेंगे। स्वर्ग या नरकमें चले जायँ तो भी वे हमारे हृदयमें रहेंगे। पशु-पक्षी या वृक्ष आदि बन जायँ तो भी वे हमारे हृदयमें रहेंगे। देवता बन जायँ तो भी वे हमारे हृदयमें रहेंगे। तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त बन जायँ तो भी वे हमारे हृदयमें रहेंगे। दुष्ट-से-दुष्ट, पापी-से-पापी, अन्यायी-से-अन्यायी बन जायँ तो भी वे भगवान् हमारे हृदयमें रहेंगे। ऐसे सबके हृदयमें रहनेवाले भगवान्‌की प्राप्ति क्या कठिन होगी? पर जीनेकी इच्छा, मानकी इच्छा, बड़ाईकी इच्छा, सुखकी इच्छा, भोगकी इच्छा आदि दूसरी इच्छाएँ साथमें रहते हुए भगवान् नहीं मिलते। कारण कि भगवान्‌के समान तो भगवान् ही हैं। उनके समान दूसरा कोई था ही नहीं, है ही नहीं, होगा ही नहीं, हो सकता ही नहीं, फिर वे कैसे मिलेंगे? केवल भगवान्‌की चाहना होनेसे ही वे मिलेंगे। अविनाशी भगवान्‌के सामने नाशवान्‌की क्या कीमत है? क्या नाशवान् क्रिया और पदार्थके द्वारा वे मिल सकते हैं? नहीं मिल सकते। जब साधक भगवान्‌से मिले बिना नहीं रह सकता, तब भगवान् भी उससे मिले बिना नहीं रहते; क्योंकि भगवान्‌का स्वभाव है—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४। ११) 'जो भक्त जिस प्रकार मेरी शरण लेते हैं, मैं उन्हें उसी प्रकार आश्रय देता हूँ।'

मान लें कि कोई मच्छर गरुड़जीसे मिलना चाहे और गरुड़जी भी उससे मिलना चाहें तो पहले मच्छर गरुड़जीके पास पहुँचेगा या गरुड़जी मच्छरके पास पहुँचेंगे? गरुड़जीसे मिलनेमें मच्छरकी ताकत काम नहीं करेगी। इसमें तो गरुड़जीकी ताकत ही काम करेगी। इसी तरह परमात्मप्राप्तिकी इच्छा हो तो परमात्माकी ताकत

ही काम करेगी। इसमें हमारी ताकत, हमारे कर्म, हमारा प्रारब्ध काम नहीं करेगा, प्रत्युत हमारी चाहना ही काम करेगी। हमारी चाहनाके सिवाय और किसी चीजकी आवश्यकता नहीं है।

हम तो भगवान्‌के पास नहीं पहुँच सकते तो क्या भगवान् भी हमारे पास नहीं पहुँच सकते? हम कितना ही जोर लगायें, पर भगवान्‌के पास नहीं पहुँच सकते। परन्तु भगवान् तो हमारे हृदयमें ही विराजमान हैं! हम भगवान्‌को दूर मानते हैं, इसलिये भगवान् हमसे दूर होते हैं। द्रौपदीने भगवान्‌को **'गोविन्द द्वारकावासिन्'** कहकर पुकारा तो भगवान्‌को द्वारका जाकर आना पड़ा। वह यहाँ कहती तो वे चट यहीं प्रकट हो जाते! अगर हम ऐसा मानते हैं कि भगवान् अभी नहीं मिलेंगे तो वे नहीं मिलेंगे; क्योंकि हमने आड़ लगा दी।

गोरखपुरकी एक घटना है। संवत् २००० से पहलेकी बात है। मैं गोरखपुरमें व्याख्यान देता था। वहाँ सेवारामजी नामके एक सज्जन थे, जो बैंकमें काम करते थे। एक दिन मैंने व्याख्यानमें कह दिया कि अगर आपका दृढ़ विचार हो जाय कि भगवान् आज मिलेंगे तो वे आज ही मिल जायँगे! उन सज्जनको यह बात लग गयी। उन्होंने विचार कर लिया कि हमें तो आज ही भगवान्‌से मिलना है। वे पुष्पमाला, चन्दन आदि ले आये कि भगवान् आयेंगे तो उनको माला पहनाऊँगा, चन्दन चढ़ाऊँगा! वे कमरा बन्द करके भगवान्‌के आनेकी प्रतीक्षामें बैठ गये। समयपर भगवान्‌के आनेकी सम्भावना भी हो गयी और सुगन्ध भी आने लगी, पर भगवान् प्रकट नहीं हुए। दूसरे दिन उन्होंने मेरेसे कहा कि आज आप मेरे घरसे भिक्षा लें। मैं कई घरोंसे भिक्षा लेकर

पाता था। उस दिन उनके घर गया तो उन्होंने मेरेसे पूछा कि भगवान् मिलनेवाले थे, सुगन्ध भी आ गयी थी, फिर बाधा क्या लगी कि वे मिले नहीं? मैंने कहा कि भाई! मेरेको इसका क्या पता? परन्तु मैं तुम्हारेसे पूछता हूँ कि क्या तुम्हारे मनमें यह बात आती थी कि इतनी जल्दी भगवान् कैसे मिलेंगे? वे बोले कि यह बात तो आती थी! मैंने कहा कि इसी बातने अटकाया! अगर मनमें यह बात होती कि भगवान् मेरेको अवश्य मिलेंगे, उनको मिलना ही पड़ेगा तो वे जरूर मिलते। भगवान् ऐसे कैसे जल्दी मिलेंगे—ऐसा भाव करके तुमने ही बाधा लगायी है।

अगर आप विचार कर लें कि भगवान् आज मिलेंगे तो वे आज ही मिल जायँगे! परन्तु मनमें यह छाया नहीं आनी चाहिये कि इतनी जल्दी कैसे मिलेंगे? भगवान् आपके कर्मोंसे अटकते नहीं। अगर आपके दुष्कर्मसे, पापकर्मसे भगवान् अटक जायँ तो वे मिलकर भी क्या निहाल करेंगे? परन्तु भगवान् किसी कर्मसे अटकते नहीं। ऐसी कोई शक्ति है ही नहीं, जो भगवान्‌को मिलनेसे रोक दे। वे न तो पापकर्मोंसे अटकते हैं, न पुण्यकर्मोंसे अटकते हैं। वे सबके लिये सुलभ हैं। अगर भगवान् हमारे पापोंसे अटक जायँ तो हमारे पाप भगवान्‌से भी प्रबल हुए! अगर पाप प्रबल (बलवान्) हैं तो भगवान् मिलकर भी क्या निहाल करेंगे? जो पापोंसे ही अटक जाय, उसके मिलनेसे क्या लाभ? परन्तु भगवान् इतने निर्बल नहीं हैं, जो पापोंसे अटक जायँ। उनके समान बलवान् कोई है नहीं, हुआ नहीं, होगा नहीं, हो सकता ही नहीं। आपकी जोरदार इच्छा हो जाय तो आप कैसे ही हों, भगवान् तो मिलेंगे, मिलेंगे, मिलेंगे! उनको मिलना पड़ेगा, इसमें

सन्देह नहीं है। परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही तो मानवजन्म मिला है, नहीं तो पशुमें और मनुष्यमें क्या फर्क हुआ?

खादते मोदते नित्यं शुनकः शूकरः खरः।
तेषामेषां को विशेषो वृत्तिर्येषां तु तादृशी॥
सूकर कूकर ऊँट खर, बड़ पशुअन में चार।
तुलसी हरि की भगति बिनु, ऐसे ही नर नार॥

देवता भोगयोनि है। वे भी चाहते हैं कि भगवान् हमारेको मिलें—'**देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः**' (गीता ११। ५२)। वे भगवान्‌को चाहते तो हैं, पर भोगोंकी इच्छाको नहीं छोड़ते। यही दशा मनुष्योंकी है। अगर आप हृदयसे भगवान्‌को चाहो तो उनको मिलना ही पड़ेगा, इसमें सन्देह नहीं है। पर आप ही बाधा लगा दो कि भगवान् नहीं मिलेंगे, तो फिर वे नहीं मिलेंगे! गीतामें साफ लिखा है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(९। ३०-३१)

'अगर कोई दुराचारी-से-दुराचारी भी अनन्य भक्त होकर मेरा भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिये। कारण कि उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है।'

'वह तत्काल (उसी क्षण) धर्मात्मा हो जाता है और निरन्तर रहनेवाली शान्तिको प्राप्त हो जाता है। हे कुन्तीनन्दन! मेरे भक्तका पतन नहीं होता—ऐसी तुम प्रतिज्ञा करो।'

तात्पर्य है कि दुराचारी-से-दुराचारी मनुष्य भी यदि '**अनन्यभाक्**' हो जाय अर्थात् भगवान्‌के सिवाय कोई चाहना न रखे तो उसको भी साधु मान लेना चाहिये; क्योंकि उसने निश्चय पक्का कर लिया है कि भगवान् जरूर मिलेंगे।

आप केवल भगवान्‌की ही इच्छा करो, और कोई इच्छा मत करो। न जीनेकी इच्छा करो, न मरनेकी इच्छा करो। न मानकी इच्छा करो, न बड़ाईकी इच्छा करो। न भोगोंकी इच्छा करो, न रुपयोंकी इच्छा करो। केवल एक भगवान्‌की इच्छा करो तो वे मिल जायँगे। कम-से-कम मेरी बातकी परीक्षा तो करके देखो! भगवान् आपको मिलते नहीं; क्योंकि आप उनको चाहते नहीं। आपके भीतर रुपयोंकी चाहना हो तो भगवान् बीचमें कूदकर क्यों पड़ेंगे? संसारमें सबसे रद्दी वस्तु रुपया है। रुपयोंसे रद्दी चीज दूसरी कोई है ही नहीं। ऐसी रद्दी चीजमें आपका मन अटका हुआ हो तो भगवान् कैसे मिलेंगे? रुपये देकर आप भोजन, वस्त्र, सवारी आदि खरीद सकते हो, पर रुपया खुद न तो खानेके काम आता है, न पहननेके काम आता है, न सवारीके काम आता है। तात्पर्य है कि रुपये काम नहीं आते, प्रत्युत उनका खर्च काम आता है।

परमात्मा इच्छामात्रसे मिलते हैं। उनको रोकनेकी ताकत किसीमें भी नहीं है। छोटा बालक रोता है तो माँ आ ही जाती है। बालक घरका कुछ भी काम नहीं करता, उल्टे काम करनेमें आपको बाधा लगाता है, पर जब वह रोने लगता है, तब सब घरवाले उसके पक्षमें हो जाते हैं। सास-ससुर, देवर-जेठ सभी कहते हैं कि बहू! बालक रो रहा है, उसको उठा ले। माँको सब

काम छोड़कर बालकको उठाना पड़ता है। बालकका एकमात्र बल रोना ही है—'**बालानां रोदनं बलम्**'। रोनेमें बड़ी ताकत है। आप सच्चे हृदयसे व्याकुल होकर भगवान्‌के लिये रोने लग जाओ तो जितने भगवान्‌के भक्त हुए हैं, सन्त-महात्मा हुए हैं, वे सब-के-सब आपके पक्षमें हो जायँगे और भगवान्‌को उलाहना देंगे कि आप मिलते क्यों नहीं? वे ही भगवान्‌के सास-ससुर आदि हैं!

वास्तवमें भगवान् मिले हुए ही हैं। आपकी सांसारिक इच्छा ही उनको रोक रही है। आप रुपयोंकी इच्छा करते हो, भोगोंकी इच्छा करते हो तो भगवान् उनको जबर्दस्ती नहीं छुड़ाते। अगर आप सांसारिक इच्छाएँ छोड़कर केवल भगवान्‌को ही चाहो तो आपको कौन रोक सकता है? आपको बाधा देनेकी किसीकी ताकत नहीं है। अगर आप भगवान्‌के लिये व्याकुल हो जाओ तो भगवान् भी व्याकुल हो जायँगे। आप संसारके लिये व्याकुल हो जाओ तो संसार व्याकुल नहीं होगा। आप संसारके लिये रोओ तो संसार राजी नहीं होगा। पर भगवान्‌के लिये रोओ तो वे भी रो पड़ेंगे।

बालक सच्चा रोता है या झूठा, यह माँ ही समझती है। बालकके आँसू तो आये नहीं, केवल ऊँ-ऊँ करता है तो माँ समझ लेती है कि यह ठगाई करता है! अगर बालक सच्चाईसे रो पड़े, उसके साँस ऊँचे चढ़ जायँ तो माँ सब काम भूल जायगी और चट उसको उठा लेगी। अगर माँ उस बालकके पास न जाय तो उस माँको मर जाना चाहिये! उसके जीनेका क्या लाभ! ऐसे ही सच्चे हृदयसे चाहनेवालेको भगवान् न मिलें तो भगवान्‌को मर जाना चाहिये!

एक साधु थे। उनके पास एक आदमी आया और उसने पूछा

कि भगवान् जल्दी कैसे मिलें? साधुने कहा कि भगवान् उत्कट चाहना होनेसे मिलेंगे। उसने पूछा कि उत्कट चाहना कैसी होती है? साधुने कहा कि भगवान्के बिना रहा न जाय। वह आदमी ठीक समझा नहीं और बार-बार पूछता रहा कि उत्कट चाहना कैसी होती है? एक दिन साधुने उस आदमीसे कहा कि आज तुम मेरे साथ नदीमें स्नान करने चलो। दोनों नदीमें गये और स्नान करने लगे। उस आदमीने जैसे ही नदीमें डुबकी लगायी, साधुने उसका गला पकड़कर नीचे दबा दिया। वह आदमी थोड़ी देर नदीके भीतर छटपटाया, फिर साधुने उसको छोड़ दिया। पानीसे ऊपर आनेपर वह बोला कि तुम साधु होकर ऐसा काम करते हो! मैं तो आज मर जाता! साधुने पूछा कि बता, तेरेको क्या याद आया? माँ याद आयी, बाप याद आया, धन याद आया या स्त्री-पुत्र याद आये? वह बोला कि महाराज, मेरे तो प्राण निकले जा रहे थे, याद किसकी आती? साधु बोले कि तुम पूछते थे कि उत्कट अभिलाषा कैसी होती है, उसीका नमूना मैंने तेरेको बताया है। जब एक भगवान्के सिवाय कोई भी याद नहीं आयेगा और उनकी प्राप्तिके बिना रह नहीं सकोगे, तब भगवान् मिल जायँगे। भगवान्की ताकत नहीं है कि मिले बिना रह जायँ।

भगवान् कर्मोंसे नहीं मिलते। कर्मोंसे मिलनेवाली चीज नाशवान् होती है। कर्मोंसे धन, मान, आदर, सत्कार मिलता है। परमात्मा अविनाशी हैं। वे कर्मोंका फल नहीं हैं, प्रत्युत आपकी चाहनाका फल है। परन्तु आपको परमात्माके मिलनेकी परवाह ही नहीं है, फिर वे कैसे मिलेंगे? भगवान् मानो कहते हैं कि मेरे बिना तेरा काम चलता है तो मेरा भी तेरे बिना काम चलता है। मेरे बिना तेरा काम अटकता है तो मेरा काम भी तेरे बिना

अटकता है। तू मेरे बिना नहीं रह सकता तो मैं भी तेरे बिना नहीं रह सकता।

आपमें परमात्मप्राप्तिकी जोरदार इच्छा है ही नहीं। आप सत्संग करते हो तो लाभ जरूर होगा। जितना सत्संग करोगे, विचार करोगे, उतना लाभ होगा—इसमें सन्देह नहीं है। परन्तु परमात्माकी प्राप्ति जल्दी नहीं होगी। कई जन्म लग जायँगे, तब उनकी प्राप्ति होगी। अगर उनकी प्राप्तिकी जोरदार इच्छा हो जाय तो भगवान्‌को आना ही पड़ेगा। वे तो हरदम मिलनेके लिये तैयार हैं! जो उनको चाहता है, उसको वे नहीं मिलेंगे तो फिर किसको मिलेंगे? इसलिये 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' कहते हुए सच्चे हृदयसे उनको पुकारो।

सच्चे हृदयसे प्रार्थना, जब भक्त सच्चा गाय है।
तो भक्तवत्सल कान में, वह पहुँच झट ही जाय है॥

भक्त सच्चे हृदयसे प्रार्थना करता है तो भगवान्‌को आना ही पड़ता है। किसीकी ताकत नहीं जो भगवान्‌को रोक दे। जिसके भीतर एक भगवान्‌के सिवाय अन्य कोई इच्छा नहीं है, न जीनेकी इच्छा है, न मरनेकी इच्छा है, न मानकी इच्छा है, न सत्कारकी इच्छा है, न आदरकी इच्छा है, न रुपयोंकी इच्छा है, न कुटुम्बकी इच्छा है, उसको भगवान् नहीं मिलेंगे तो क्या मिलेगा? आप पापी हैं या पुण्यात्मा हैं, पढ़े-लिखे हैं या अपढ़ हैं, इस बातको भगवान् नहीं देखते। वे तो केवल आपके हृदयका भाव देखते हैं—

रहति न प्रभु चित चूक किए की।
करत सुरति सय बार हिए की॥

(मानस, बाल० २९। ३)

वे हृदयकी बातको याद रखते हैं, पहले किये पापोंको याद रखते ही नहीं! भगवान्‌का अन्त:करण ऐसा है, जिसमें आपके

पाप छपते ही नहीं! केवल आपकी अनन्य लालसा छपती है। भगवान् कैसे मिलें? कैसे मिलें? ऐसी अनन्य लालसा हो जायगी तो भगवान् जरूर मिलेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। आप और कोई इच्छा न करके, केवल भगवान्‌की इच्छा करके देखो कि वे मिलते हैं कि नहीं मिलते हैं! आप करके देखो तो मेरी भी परीक्षा हो जायगी कि मैं ठीक कहता हूँ कि नहीं! मैं तो गीताके बलपर कहता हूँ। गीतामें भगवान्‌ने कहा है—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (४। ११) 'जो भक्त जिस प्रकार मेरी शरण लेते हैं, मैं उन्हें उसी प्रकार आश्रय देता हूँ।' हमें भगवान्‌के बिना चैन नहीं पड़ेगा तो भगवान्‌को भी हमारे बिना चैन नहीं पड़ेगा। हम भगवान्‌के बिना रोते हैं तो भगवान् भी हमारे बिना रोने लग जायँगे! भगवान्‌के समान सुलभ कोई है ही नहीं! भगवान् कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

'हे पृथानन्दन! अनन्य चित्तवाला जो मनुष्य मेरा नित्य-निरन्तर स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें लगे हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसको सुलभतासे प्राप्त हो जाता हूँ।'

भगवान्‌ने अपनेको तो सुलभ कहा है, पर महात्माको दुर्लभ कहा है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७। १९)

'बहुत जन्मोंके अन्तिम जन्ममें अर्थात् मनुष्यजन्ममें 'सब कुछ परमात्मा ही हैं'—इस प्रकार जो ज्ञानवान् मेरे शरण होता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।'

हरि दुरलभ नहिं जगत में, हरिजन दुरलभ होय।
हरि हेर्‍याँ सब जग मिलै, हरिजन कहिं एक होय॥

भगवान्‌के भक्त तो सब जगह नहीं मिलते, पर भगवान् सब जगह मिलते हैं। भक्त जहाँ भी निश्चय कर लेता है, भगवान् वहीं प्रकट हो जाते हैं—

आदि अन्त जन अनँत के, सारे कारज सोय।
जेहि जिव उर नहचो धरै, तेहि ढिग परगट होय॥

प्रह्लादजीके लिये भगवान् खम्भेमेंसे प्रकट हो गये—

प्रेम बदौं प्रहलादहिको, जिन पाहनतें परमेस्वरु काढ़े॥

(कवितावली ७। १२७)

भगवान् सबके परम सुहृद् हैं। वे पापी, दुराचारीको जल्दी मिलते हैं। माँ कमजोर बालकको जल्दी मिलती है। एक माँके दो बेटे हैं। एक बेटा तो समयपर भोजन कर लेता है, फिर कुछ नहीं लेता और दूसरा बेटा दिनभर खाता रहता है। दोनों बेटे भोजनके लिये बैठ जायँ तो माँ पहले उसको रोटी देगी जो समयपर भोजन करता है; क्योंकि वह भूखा उठ जायगा तो शामतक खायेगा नहीं। दूसरे बेटेको माँ कहती है कि तू ठहर जा; क्योंकि वह तो बकरीकी तरह दिनभर चरता रहता है। दोनों एक ही माँके बेटे हैं, फिर भी माँ पक्षपात करती है। इसी तरह जो एक भगवान्‌के सिवाय कुछ नहीं चाहता, उसको भगवान् सबसे पहले मिलते हैं; क्योंकि वह भगवान्‌को अधिक प्रिय है। वह एक

८-एक नयी बात

जिससे क्रियाकी सिद्धि होती है, जो क्रियाको उत्पन्न करनेवाला है, उसको 'कारक' कहते हैं। कारकोंमें कर्ता मुख्य होता है; क्योंकि सब क्रियाएँ कर्ताके ही अधीन होती हैं। अन्य कारक तो क्रियाकी सिद्धिमें सहायकमात्र होते हैं, पर कर्ता स्वतन्त्र होता है। कर्तामें चेतनका आभास होता है; परन्तु वास्तवमें चेतन कर्ता नहीं होता। इसलिये गीतामें जहाँ भगवान्‌ने कर्ममात्रकी सिद्धिमें अधिष्ठान, कर्ता, करण, चेष्टा और दैव—ये पाँच हेतु बताये हैं, वहाँ शुद्ध आत्मा (चेतन)-को कर्ता माननेवालेकी निन्दा की है—

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः॥

(१८। १६)

'ऐसे पाँच हेतुओंके होनेपर भी जो कर्मोंके विषयमें केवल (शुद्ध) आत्माको कर्ता देखता है, वह दुष्ट बुद्धिवाला ठीक नहीं देखता; क्योंकि उसकी बुद्धि शुद्ध नहीं है अर्थात् उसने विवेकको महत्त्व नहीं दिया है।'

गीतामें भगवान्‌ने कहीं प्रकृतिको, कहीं गुणोंको और कहीं इन्द्रियोंको कर्ता बताया है। प्रकृतिका कार्य गुण हैं और गुणोंका कार्य इन्द्रियाँ हैं। अतः वास्तवमें कर्तृत्व प्रकृतिमें ही है। हमारे चेतन स्वरूपमें कर्तृत्व नहीं है। भगवान्‌ने कहा है—

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति॥

(१३। २९)

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

(३।२७)

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते॥

(३।२८)

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥

(१४।१९)

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्॥

(५।९)

भगवान्ने अपनेमें भी कर्तृत्व-भोक्तृत्वका निषेध किया है; जैसे—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥
न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥

(गीता ४।१३-१४)

'मेरे द्वारा गुणों और कर्मोंके विभागपूर्वक चारों वर्णोंकी रचना की गयी है। उस (सृष्टि-रचना आदि)-का कर्ता होनेपर भी मुझ अविनाशी परमेश्वरको तू अकर्ता जान। कारण कि कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिये मुझे कर्म लिप्त नहीं करते। इस प्रकार जो मुझे तत्त्वसे जान लेता है, वह भी कर्मोंसे नहीं बँधता।'

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु॥

(गीता ९। ९)

'हे धनंजय! उन (सृष्टि-रचना आदि) कर्मोंमें अनासक्त और उदासीनकी तरह रहते हुए मुझे वे कर्म नहीं बाँधते।'

तात्पर्य है कि सृष्टिकी रचना, पालन, संहार आदि सम्पूर्ण कर्मोंको करते हुए भी भगवान् उन कर्मोंसे लिप्त नहीं होते अर्थात् उनमें कर्तापन और भोक्तापन नहीं आता। भगवान्‌का ही अंश होनेसे जीवमें भी कर्तापन और भोक्तापन नहीं आता—

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते॥

(गीता १३। ३१)

'हे कुन्तीनन्दन! यह पुरुष स्वयं अनादि होनेसे और गुणोंसे रहित होनेसे अविनाशी परमात्मस्वरूप ही है। यह शरीरमें रहता हुआ भी न करता है और न लिप्त होता है।'

दो विभाग हैं—जड़ और चेतन। जड़-विभाग नाशवान् है और चेतन-विभाग अविनाशी है। गीतामें भगवान्‌ने जड़-विभागको प्रकृति, क्षेत्र, क्षर आदि नामोंसे कहा है और चेतन-विभागको पुरुष, क्षेत्रज्ञ, अक्षर आदि नामोंसे कहा है। ये दोनों विभाग अन्धकार और प्रकाशकी तरह परस्पर सर्वथा असम्बद्ध हैं। जड़-विभाग असत् है, जिसकी सत्ता ही विद्यमान नहीं है और चेतन-विभाग सत् है, जिसकी सत्ता विद्यमान है—'**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः**' (गीता २। १६)। सम्पूर्ण क्रियाएँ जड़-विभागमें ही होती हैं। चेतन-विभागमें कभी किंचिन्मात्र भी कोई

क्रिया नहीं होती। स्थूलशरीर तथा उससे होनेवाली क्रियाएँ, सूक्ष्मशरीर तथा उससे होनेवाला चिन्तन और कारणशरीर तथा उससे होनेवाली स्थिरता और समाधि—ये सभी जड़-विभागमें ही हैं। कामना, ममता, अहंता आदि सम्पूर्ण विकार जड़-विभागमें ही हैं। सम्पूर्ण पाप-ताप भी जड़-विभागमें ही हैं। पराश्रय तथा परिश्रम—ये दोनों जड़-विभागमें हैं और भगवदाश्रय तथा विश्राम (अपने लिये कुछ न करना)—ये दोनों चेतन-विभागमें हैं। जड़ और चेतनके विभागको अलग-अलग जानना ही ज्ञान है—'**क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा**' (गीता १३। ३४)। इस ज्ञानरूपी अग्निसे सम्पूर्ण पाप सर्वथा नष्ट हो जाते हैं—

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि॥
यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥

(गीता ४। ३६-३७)

'अगर तू सब पापियोंसे भी अधिक पापी है तो भी तू ज्ञानरूपी नौकाके द्वारा निःसन्देह सम्पूर्ण पाप-समुद्रसे अच्छी तरह तर जायगा। हे अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनोंको सर्वथा भस्म कर देती है, ऐसे ही ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण (संचित, प्रारब्ध* तथा क्रियमाण) कर्मोंको सर्वथा भस्म कर देती है।'

तात्पर्य है कि चेतन-विभागमें अपनी स्वतः-स्वाभाविक स्थितिका अनुभव करते ही साधक सम्पूर्ण विकारों तथा पापोंसे छूट जाता

* ज्ञान होनेपर प्रारब्ध अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति तो पैदा कर सकता है, पर सुखी-दुःखी नहीं कर सकता।

है और जन्म-मरणसे मुक्त हो जाता है। कारण कि जड़-विभागके साथ अपना सम्बन्ध मानना ही जन्म-मरणका मूल कारण है—'**कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु**' (गीता १३। २१)।

यहाँ एक शंका हो सकती है कि चेतनके बिना केवल जड़में पाप-पुण्य आदि होना कैसे सम्भव है? इसका समाधान है कि जैसे एक गाड़ीकी टक्करसे कोई मनुष्य मर जाय तो उसका दण्ड गाड़ीको न होकर उसके चालकको होता है। दुर्घटनारूप क्रिया तो गाड़ीके द्वारा ही हुई, पर उसका दण्ड उसको भोगना पड़ता है, जिसने उस गाड़ीसे अपना सम्बन्ध जोड़ा अर्थात् जो उस गाड़ीका चालक (कर्ता) बना। जो कर्ता होता है, वही भोक्ता होता है। ऐसे ही पाप-पुण्यरूप क्रिया तो जड़ (शरीर)-के द्वारा ही होती है, पर उसका फल जड़के साथ अपना सम्बन्ध माननेवाले कर्ता (चेतन)-को ही भोगना पड़ता है। तात्पर्य है कि सभी विकार जड़-विभागमें ही होते हैं, पर जड़से तादात्म्य माननेके कारण उसका परिणाम चेतनपर होता है। जैसे ज्वर शरीरमें आता है, पर शरीरसे तादात्म्य करनेके कारण मनुष्य मान लेता है कि मेरेमें ज्वर आ गया। स्वयं (चेतन)-में ज्वर नहीं आता, यदि आता तो कभी मिटता नहीं। जड़-विभागके साथ अर्थात् अपरा प्रकृतिके अंश अहम्‌के साथ अपना सम्बन्ध (तादात्म्य) मान लेनेके कारण ही अज्ञानी मनुष्य अपनेको कर्ता तथा भोक्ता मान लेता है—'**अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते**' (गीता ३। २७), '**पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्**' (गीता १३। २१)। तात्पर्य है कि स्वयं (चेतन स्वरूप)-में कर्तापन तथा भोक्तापन बनता नहीं है, प्रत्युत वह अविवेकपूर्वक अपनेको

कर्ता-भोक्ता मान लेता है। सुखलोलुपता अथवा फलेच्छाके कारण वह अपनेको कर्ता मानता है और अपनेको कर्ता माननेके कारण उसको कर्मफलका भोक्ता बनना पड़ता है। कारण कि अपनेको कर्ता मान लेनेसे वह प्रकृतिकी जिस क्रियाके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ता है, वह क्रिया उसके लिये फलजनक 'कर्म' बन जाती है।

स्वयंमें लेशमात्र भी कर्तृत्व-भोक्तृत्व नहीं है—'**नैव किञ्चित्करोति सः**' (गीता ४। २०), '**नैव किञ्चित्करोमीति**' (गीता ५। ८)। आजतक चौरासी लाख योनियोंमें जो भी क्रियाएँ की गयी हैं, उनमेंसे कोई भी क्रिया स्वयंतक नहीं पहुँची; क्योंकि स्वयंका विभाग ही अलग है और क्रियाका विभाग ही अलग है। जबतक अपने लिये 'करना' है, तबतक कर्तापन (अहंकार) है; क्योंकि कर्तापनके बिना अपने लिये 'करना' सिद्ध नहीं होता। इसलिये अपने उद्धारके लिये जो साधन किया जाता है, उससे अहंकार ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रहता है। अहंकारपूर्वक किया गया कोई भी कर्म कल्याणकारक नहीं होता; क्योंकि अहंकार ही जन्म-मरणका मूल है। इसलिये साधकको चाहिये कि वह क्रियाको महत्त्व न देकर स्वयंको महत्त्व दे।

शरीरका सम्बन्ध संसारके साथ है और स्वयंका सम्बन्ध परमात्माके साथ है। शरीर प्रकृतिका अंश है और स्वयं परमात्माका अंश है। अतः स्वयं कभी शरीरस्थ (शरीरमें स्थित) हो सकता ही नहीं। परन्तु अज्ञानके कारण मनुष्य अपनेको शरीरस्थ मान लेता है। इसमें एक मार्मिक बात है कि अपनेको शरीरस्थ मान लेनेपर भी वास्तवमें स्वयं कर्ता-भोक्ता नहीं

बनता—'**शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते**' (गीता १३। ३१)। इससे सिद्ध होता है कि स्वयंका कर्ता-भोक्ता न होना साधनजन्य नहीं है, प्रत्युत स्वत:-स्वाभाविक है। अत: साधकको कर्तृत्व-भोक्तृत्व मिटाना नहीं है, प्रत्युत इनको अपनेमें स्वीकार नहीं करना है; क्योंकि वास्तवमें ये अपनेमें हैं ही नहीं। गीतामें भगवान्‌ने आत्मामें भोक्तृत्वके अभावको आकाशका दृष्टान्त देकर और कर्तृत्वके अभावको सूर्यका दृष्टान्त देकर समझाया है—

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते॥

(गीता १३। ३२)

'जैसे सब जगह व्याप्त आकाश अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे कहीं भी लिप्त नहीं होता, ऐसे ही सब जगह परिपूर्ण आत्मा किसी भी देहमें लिप्त नहीं होता।'

चिन्मय सत्ता शरीरस्थ अथवा प्रकृतिस्थ हो ही नहीं सकती। वह आकाशकी तरह सर्वत्र स्थित (सर्वगत) है—'**नित्यः सर्वगतः**' (गीता २। २४)। वह सम्पूर्ण शरीरोंके बाहर-भीतर सर्वत्र परिपूर्ण है। वह सर्वव्यापी सत्ता ही हमारा स्वरूप है।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत॥

(गीता १३। ३३)

'हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! जैसे एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण संसारको प्रकाशित करता है, ऐसे ही क्षेत्रज्ञ (आत्मा) सम्पूर्ण क्षेत्रोंको प्रकाशित करता है।'

सूर्यके प्रकाशमें सम्पूर्ण शुभ-अशुभ क्रियाएँ होती हैं। सूर्यके

प्रकाशमें कोई वेदका पाठ करता है, कोई शिकार करता है। परन्तु सूर्यको उन क्रियाओंका न तो पुण्य लगता है, न पाप। कारण कि सूर्य उन क्रियाओंका न तो कर्ता बनता है, न भोक्ता ही बनता है। इसी तरह आत्मा (सर्वव्यापी सत्ता) सम्पूर्ण शरीरोंको सत्ता-स्फूर्ति देता है, पर वास्तवमें वह न तो कुछ करता है और न लिप्त ही होता है। इसलिये भगवान् कहते हैं—

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥

(गीता १८। १७)

'जिसका अहंकृतभाव (मैं कर्ता हूँ—ऐसा भाव) नहीं है और जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती, वह (युद्धमें) इन सम्पूर्ण प्राणियोंको मारकर भी न मारता है और न बँधता है।'

जैसे गङ्गाजीमें कोई डूबकर मर जाता है तो गङ्गाजीको पाप नहीं लगता और कोई स्नान आदि करता है तो गङ्गाजीको पुण्य नहीं लगता। कारण कि गङ्गाजीमें अहंकृतभाव (कर्तृत्व) और बुद्धिकी लिप्तता (भोक्तृत्व) नहीं है।

कर्तृत्व-भोक्तृत्व प्रकृतिमें ही है, स्वरूपमें नहीं। इसलिये अपने स्वरूपमें स्थित तत्त्वज्ञ महापुरुष 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ'—ऐसा अनुभव करता है—'**नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्**' (गीता ५। ८)। खाने-पीने, सोने-जागने, नौकरी-धंधा करने आदि सम्पूर्ण लौकिक क्रियाएँ और श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि सम्पूर्ण पारमार्थिक क्रियाएँ प्रकृतिमें ही हो रही हैं। स्वरूपमें कोई भी क्रिया सम्भव नहीं है। इसलिये साधकको चाहिये कि वह शास्त्रविहित लौकिक तथा पारमार्थिक क्रियाओंका

बाहरसे त्याग तो न करे, पर उनमें अपना कर्तृत्व न माने अर्थात् उनको अपने द्वारा होनेवाली और अपने लिये न माने। क्रियाका महत्त्व वास्तवमें जड़ताका ही महत्त्व है। क्रियाकी मुख्यता होनेपर वर्षोंतक साधन करनेपर भी प्रत्यक्ष लाभ नहीं दीखता। इसलिये साधकके अन्त:करणमें क्रियाका अर्थात् जड़-विभागका महत्त्व न होकर चेतन-विभागका ही महत्त्व होना चाहिये। साधक शरीर नहीं होता, जबकि क्रिया शरीरके द्वारा ही होती है। साधकका स्वरूप चिन्मय सत्तामात्र है और सत्तामात्रमें कोई क्रिया नहीं होती। क्रिया और पदार्थ संसारका स्वरूप है।

कर्तृत्व-भोक्तृत्व अपनेमें नहीं हैं, प्रत्युत अज्ञानके कारण अपनेमें माने हुए हैं। अपनेमें माननेपर भी वास्तवमें हम कर्तृत्व-भोक्तृत्वसे रहित ही हैं—'**शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते**'। तात्पर्य है कि शरीरमें अपनी स्थिति माननेपर भी वास्तवमें हम शरीरसे असंग हैं। अपनेमें बन्धनकी मान्यता करनेपर भी वास्तवमें हम मुक्त ही हैं। इस सत्यको स्वीकार करना साधकके लिये बहुत ही आवश्यक है।